परम्परा से विधान की ओर प्रवाहमान गोरक्षा का विधिशास्त्र

Haricharan Singh Yadav[1]*, Dr. Dharmendra Kumar Singh[2]

[1] Research-Scholar, Law Department, M.J.P. Ruhalkhand University, Bareilly (UP) India

[2] Associate Professors, Law Department, Bareilly College, Bareilly (UP) India

सारांश *- गोहत्या प्रतिशेध हेतु आवश्यक विधिक उपायों के विरूद्ध आज भारत में अनेक स्वर मुखर हैं। वस्तुतः संवैधानिक निर्देशो को अग्रसारित करने वाले मौजूदा प्रयासों का तात्कालिक लक्ष्य जहां विधायन के माध्यम से लोकनीति को, जिसमें हिंसा का अतिसीमित स्थान है, अग्रसर करना है वहीं इसका एक विशद सांस्कृतिक पक्ष भी है। अपनी सुस्थिर गति में प्रतिगामी सामाजिक विचलन के लक्षणों का समाज विविध उपायों के माध्यम से प्रतिकार करता है। यह संघर्ष एक ऐतिहासिक तथ्य है और इसकी सम्पूर्ण यात्रा में रेखांकित हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन ऐसे सूत्रों के उद्घाटन का एक प्रयास है जो अतीत से अपनी यात्रा आरम्भ कर वर्तमान में विधायनों और न्यायिक विवेचनाओं में सूत्रबद्ध भी हुए हैं। इसका उद्देश्य इस संभावना की खोज करना है कि क्या हम भारत की विगत यात्रा का पुनरावलोकन कर मौजूदा दृष्टिगोचर उथल पुथल के थम जाने की आशा कर सकते हैं और यदि हां, तो उपाय क्या हो सकते है?*

महत्वपूर्ण शब्दः- *गोरक्षा, विधिशास्त्र, अनुच्छेद 48, धर्म की स्वतंत्रता, भारत का संविधान*

प्रस्तावना

सामान्य अर्थों में विधिशास्त्र विधि के ज्ञान से संबंधित है तो कहीं इसका प्रयोग न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णय क्रम के लिए भी किया गया है। परवर्ती समय में इसके अर्थ को कुछ विशिष्टता मिल गयी और इसका तात्पर्य उन सामान्य सिद्धांतों के वर्णन से माना गया जिन पर विधि के वास्तविक नियम आधारित हैं। प्रारंभ में ही इस मान्यता की ओर ध्यान दे देना आवश्यक लगता है कि विधिशास्त्र या विधि के सिद्धांत का एक छोर दर्शन और दूसरा छोर राजनीतिक सिद्धांत से जुड़ा है।

गोवध का निषेध वर्तमान में भारतीय विधिक जगत के बड़े प्रश्नों में से एक अहम् प्रश्न बना हुआ है।1 पूर्ववर्ती काल की तुलना में यह प्रश्न अपनी सहजता खोकर अब एक जटिल समस्या का रूप ग्रहण कर चुका है। सन्दर्भ और प्रकृति में विलग मुद्दों के कुसंयोजन से मौजूदा दौर में जटिलता और भी बढ़ी है। ऐसा देखने में आता है कि पूर्ववर्ती समय में यह आयोजित घालमेल न था

या न के बराबर ही था। प्राचीनकालीन भारतीय विधिक विचार इस संकल्पना पर आधारित था कि सामूहिक जीवन के अस्तित्व को नियंत्रित करने के लिए कुछ मूलभूत सिद्धांत हैं जिनका अस्तित्व राजनीतिक दिशाओं से स्वतंत्र रूप में स्थापित है, जो राजा और प्रजा सभी पर समान रूप से लागू होते हैं। इसे 'ऋत' के रूप में स्वीकार किया गया है। ऐसा नहीं है कि भारत ने बस विधि के इसी स्थायी और अपरिवर्तनशील रूप को ही स्वीकार किया। यहां इसकी जगह 'धर्म'- धर्म और व्यवहार दो रूपों में उपलब्ध - का प्रयोग भी मान्य किया गया। व्यवहार के रूप में विधि सामाजिक, आध्यात्मिक विचारों और सामाजिक जीवन के अनुसार समायोजनक्षम भी मानी गयी।

भारत एक लम्बी, समृद्ध व वैविध्यपूर्ण ऐतिहासिक परम्परा का देश है। यह सहज ही प्रमाणित है कि प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के मानव जीवन के सभी रूप इस विशद् भौगोलिक परिक्षेत्र के अन्दर उपलब्ध रहे हैं। जीवन व्यवहार की इसकी विशिष्टता साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित तथ्य है और इसे दुनिया में उभरी तमाम संस्कृतियों एवं समाजों से पृथक् करने के लिए पर्याप्त है। विशेषज्ञों के लिए विस्मयकारी मान्यताएं भी यहाँ जीवन के सहज तथ्य रहे हैं और विश्वास को बहुधा तर्क से ऊपर रखना मान्य व्यवहार। विद्वान अचकचाते हुए पूछ बैठते हैं कि इस पृथ्वी पर का कोई जानवर व चीज गहन श्रद्धा की वस्तु कैसे हो जाएगी? ऐसा होना कई बार विचित्र लगता है लेकिन यही एक विशिष्ट भारत गढ़ता है। कहना जरूरी नहीं कि विश्वास हरदम अतार्किक ही नहीं हुआ करते। अब कौन जानता था कि एक दिन पश्चिम की 'अति आधुनिक' दुनिया भी पीपल और पोखर को पूजने का या कम से कम आदर देने का वह व्यवहार अपनी संतति को सिखाने के लिए विपुल धनराशि खर्च करने को आतुर होगी जोकि सभ्यता के प्रारंभिक चरण से ही भारत में जीवन का सामान्य जन-व्यवहार रहा है। सिंधु-सभ्यता से प्राप्त प्रमाणों में भी वृक्षों, जलाशयों व प्रकृति के अन्य तत्वों, जिनमें जानवर भी शामिल है, की पूजा के विपुल साक्ष्य उपलब्ध हैं। आज तो यह प्रत्यक्ष है जिसे किसी प्रमाण की जरुरत ही नहीं।

यह देखा जा सकता है कि ऐसा विचार कि जल, जंगल, जमीन व जानवर के भीतर भी परमात्म शक्ति का अंश है; या कि उनकी पूजा का व्यवहार किसी स्वतः स्फूर्त प्रक्रिया से उत्पन्न न होकर एक सचेत व प्रयासपूर्ण आरोपण का फल है। इसे वेदों में भारत ने गाया है, गुरूकुलों में सिखाया है और निरंतर संस्कृति के विविध अधिष्ठानों के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाया भी गया है। जीवन व्यवहार यानि कि संस्कृति की यात्रा का एक सामान्य पुनरावलोकन भी इसके निमित्त पर्याप्त होगा। पूर्ववैदिक काल में गोमांस-भक्षण व प्रयोग के पक्ष में बलात् पेश दलीलें कम से कम इतना तो साबित कर ही देती हैं कि उत्तरवैदिक समाज अपने सचेतन प्रयास से इस प्रवृत्ति से दूर हटा है और इसे पाप-कर्म, त्याज्य- कर्म की कोटि में शामिल किया गया। यह सब अपने आप हो गया, मानना कठिन है। राजसत्ता से निरपेक्ष रहकर समाज जीवन में मान्य व्यवहार की सतत

उपस्थिति के पीछे वर्षो की तैयारी और अनेक संघर्षो की महती भूमिका रही। मुसलमान व ईसाई सरीखे विपरीत मतावलंबियों के राज में सनातन विचारों की रक्षा हेतु चलते हुए सामाजिक-राजनैतिक संघर्ष भी इस स्थापना को पुष्ट करते हैं।

हम अभी यह नहीं कह सकते है कि गोरक्षा के आग्रह का सम्मान भारत के भीतर राजसत्ताओं की एक सहज वृत्ति रही है, परन्तु यह कहना संम्भव है कि उन्होंने एक लोक विश्रुत मान्यता एवं जन-आग्रह का सम्मान अवश्य किया। विधिशास्त्र के क्षेत्र में आज कई आधुनिक विधिशास्त्री भी अंतर्चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में विधि की परिभाषा को स्वीकार करते हैं। ऐसा उस समय स्वतः स्फूर्त रहा होगा या हो सकता है कि संभावित सामाजिक संघर्षो के परिहार की सोच की इसमें मुख्य भूमिका रही हो। अग्रिम विवेचन ही इस पक्ष पर रोशनी डालने में समर्थ होगा।

पूर्ववैदिक एवं वैदिककालीन भारतीय व्यवहार तथा शिक्षा

यद्यपि, सिंधु सभ्यता की लिपिबद्ध सामग्री दुरुह होने के कारण कोई राज उद्घाटित नहीं करती, फिर भी अन्वेषणकर्ताओं को इस बात के अनेक पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं कि उस काल में मनुष्य प्रकृति के तत्वों की महत्ता से बखूबी परिचित था और उनमें से ही ऐसे कई तत्वों की पूजा करता था। इन पूजनीय तत्वों में वृष भी शामिल है**2**, जिससे गोवंशीय पशुओं की महत्ता के सम्बन्ध में सिन्धु घाटी के निवासियों का विचार प्रगट होता है। सिंधुघाटी सभ्यता के पुरातात्विक स्थलों से प्राप्त मुद्राओं पर पशुओं का अंकन हुआ है। विद्वानों का अनुमान है कि इन्हें पवित्र व पूजा की वस्तु माना जाता होगा। जानवर उस समय संस्कृति के भाग थे और वैवाहिक समारोहों में अनिवार्य रूप से शामिल भी किए जाते थे।**3** मोहेंदो-जारो की खुदाई में प्राप्त मुद्रा पर सांड़ की सींग, पूंछ और खुर वाले मनुष्य की आकृति का अंकन प्राप्त होता है। इसे पशुओं की पूजा का प्रतीक साक्ष्य माना गया है।

वैदिक काल के जीवन को वर्तमान में जानने का साधन लिखित सामग्री है। ऋचाओं एवं सूक्तों के रूप में उपलब्ध विविध पाठों ;टेक्स्ट्सद्ध की भावनाएं एक दूसरे के विरुद्ध दर्शाई गई हैं और बहुधा गोमांस भक्षण को सहेतुक प्राचीनकालीन ठहराने का परवर्ती प्रयास लगती हैं। संक्षिसतः, हम पाते हैं कि अनेक पाठ गोमांस खाने की दैवीय तथा सामान्य जन की प्रवृत्ति को पुष्ट करने के लिए प्रयुक्त किए गए हैं। विदेशी विद्वानों के साथ-साथ कुछ भारतीय विद्वान वेद के सूत्रों के आधार पर यह सिद्ध करने की कोशिश करते रहे हैं कि उस काल में मांस, यहां तक कि गोमांस भी खाया जाता था। गोमांस खाना न केवल परंपरा थी वरन् जीवन के अनेक व्यवहारों में यह एक अनिवार्य पदार्थ था। इन्द्र, जो सर्वश्रेष्ठ देव माने जाते हैं, स्वतः इस बात की पुष्टि करते हुए प्रदर्शित किए गए हैं।**4** इन्द्र के समान ही अग्नि के संबंध में भी ऐसा दर्शाया गया है।**5** यह प्रयास कुछ नया सा भी नहीं जान पड़ता। **1884** में प्रकाशित अपनी रचना के माध्यम से एक विद्वान इस स्थापना के पक्ष में खड़े दिखते हैं।**6** दैवीय

भोज्य पदार्थ होने के साथ ही साथ गोमांस धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त सामग्री के रूप में भी उल्लिखित हुआ है।7 संस्कृति के अंग के रूप में यह दाह-संस्कार के समय अनिवार्य रूप से उपयोग में लाया जाता था।8 निष्कर्षतः यह साबित किया जा रहा है कि प्राचीन वैदिक संस्कृति के अंतर्गत गोहत्या व गोमांस का भक्षण तथा उपयोग सामान्य आहार व संस्कार का अंग था।

प्रमाण इन प्रस्थापनाओं (सम्भावनाओं) को पर्याप्त परिमाण में कम करने को भी उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम हम इस उल्लेख की ओर ध्यान दें कि वैदिक संस्कृति यद्यपि कि बहुलवादी है परंतु शाकाहार की ओर विशिष्टतया उन्मुख9 यज्ञ-संस्कृति है; कि ऋग्वेद में यज्ञ में हिंसा मात्र के निषेध की बात की गयी है10। इसी के साथ हमें इस बात की ओर भी ध्यान ले जाना है कि संहिताबद्ध ऋचाओं में गाय को 'अघन्या' व 'अदिति' की संज्ञाओं से अभिहित किया गया है11। अब इस बात को समझ पाना कठिन हो जाता है कि आखिर क्यों एक ही वैदिक संहिता के एक भाग में पशुवध की वर्जना है तो दूसरे भाग में ऐसा नहीं है। ऐसी स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि वेदों में किसी भी भांति की पशुहत्या की बात का निष्कर्ष निकालना उचित न होगा। हमारा यह मत अन्य प्रमाणों के प्रकाश में और भी पुष्ट हो जाता है। यजुर्वेदादि ऋग्वेदेत्तर संहिताएं आत्मामात्र की एकता व जीवहत्या यानि सृष्टि-हत्या के जिस संदेश का प्रतिपादन करती हैं वह गोहत्या व गोमांस-भक्षण संबंधी निष्कर्ष के विरोध में ही है12। यहाँ ध्यातव्य है कि परवर्ती काल में विद्वानों द्वारा वेदों के मूलपाठ पर रचित विविध टीका ग्रंथों में भी गो-मांस खाने को गर्हित कर्मों में शामिल किया गया है; अर्थात समाज की चेतना इस बात की अनुमति नहीं देती। यह कैसे संभव है कि टीकाकार मूल पाठ की भावना को ही खंडित करते हुए स्वयं के विचारों का प्रतिपादन करें? दूसरे, उपरोक्त टीकाओं के परवर्ती हिन्दू धर्मशास्त्र, जिनमें विधिक सूत्रों का विवेचन किया गया है, कतिपय ही गोहत्या का पक्ष पोषण करते हैं; वस्तुतः इनमें भी इस प्रवृत्ति को पाप-कर्म (हत्या) ही निर्धारित किया गया है13। इन विचारों व जारी बहसों के आलोक में इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में ग्रहण किए जा रहे इस भाव का पुनरीक्षण आवश्यक हो गया है कि वैदिक साहित्य गोवध का समर्थन करता है।

वेदोत्तर नवीन धर्म व जनविश्वास बनते दर्शन

भारतीय इतिहास की यात्रा ने बाद के कालखण्ड में दो महान आन्दोलनों का साक्षात्कार किया जहाँ अहिंसा को परम् आचार के रुप में अपनाया गया। बौद्ध मत एवं जैन मत का प्रसार अभिजन वर्ग की अपेक्षा आमजन के मध्य बड़ी तेजी से हुआ। जैन धर्म की शिक्षा के ग्रंथ अचरंग-सूत्र के अनुसार किसी भी सांसयुक्त, अस्तित्ववान, जीवित, संवेदनसमर्थ जीवधारी की हत्या नहीं होनी चाहिए; न तो उसके साथ हिंसा होनी चाहिए14। यहां तक कि टहलते समय किसी चींटी को मार देना भी पाप समझा जाता था। इस प्रकार के विचार को हम पूर्वकथित वैदिक साहित्य के उद्धरणों में भी पाते हैं। यह एकता किस भांति आकस्मिक ठहरायी जा सकती है?

विचारों की एकता के इस तथ्य पर गौर करने पर एक सम्यक निष्कर्ष यह निकलता है कि इस भूभाग का इतिहास एक सतत यात्रा है तथा भारतीय जीवन प्रवाह वैचारिक अधिष्ठान के अपने मौलिक तल पर भी अटूट रहा है। अहिंसा के प्रति पूर्वकथित आग्रह उपरोक्त पुनरोद्भूत भाव के प्रभाव में क्रमशः जनविश्वास में परिणित हो गया तथा जीवों के प्रति की गई हिंसा का विचार निंदनीय घोषित कर दिया गया। हिंसा का आचरण मनुष्य को पाप का भागी बना देता है, यह विचार काफी गहरे जा पैठा। यहाँ ध्यान रखना होगा कि तत्कालीन समाज में जनविश्वास व धार्मिक मान्यताएं आचरण के प्रमुख नियामक के रुप में स्थापित थे। आधुनिक काल जैसे विधायी नियमन के सूत्रों (विधायन) व तंत्र का तो सर्वथा अभाव ही था। राज्य प्रेरित नियामकों का प्रभाव तो पश्चात्वर्ती कालखण्ड में ही स्थापित हो सका। गायें चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में भी श्रद्धा की व पवित्र वस्तु थीं जिन्हें दान भी दिया जाता था**15**। इस प्रकार, ईसा की पहली शताब्दी के मध्य में गुप्त राजाओं द्वारा गाय की हत्या करने पर मृत्यु-दण्ड का प्रावधान किया गया**16**। इसके बाद कुछ अंशकालिक अपवादों को छोड़कर दसवीं सदी तक धर्म परायण हिंन्दू राजाओं का भारत वर्ष पर शासन चलता रहा। धार्मिक विश्वास व मान्यताएं जहाँ प्रमुख शासन सूत्र रहे, जिनका निष्पादन मंत्री द्वारा, जो प्रायः ब्राह्मण वर्ग से आता था, होता रहा। श्रुति सम्मत आचरण प्रमुख लक्ष्य रखा गया। ऐसे समय गो-हत्या की घटनाओं की उपस्थिति का विचार कोरी कल्पना के सिवा और कुछ भी नहीं ठहरता।

मध्यकालीन भारत

इतिहास एक सतत यात्रा है तथा भारतीय जीवन प्रवाह अटूट रहा है। वह दौर कभी नहीं आया जब यह देश बिखरकर समाप्त हो गया हो और उसे पुनः उठ खड़े होने के लिए जरूरी जीवन-सूत्रों की पुनर्खोज करनी पड़ी हो। राजनैतिक व्यवस्थाएं यद्यपि कि बनती बिगड़ती रहीं या फिर रूप में परिवर्तित हुईं फिर भी समाज का मूल चरित्र व चिंतन अपनी जड़ों से प्रभावित व अनुप्राणित होता रहा। सुल्तानों और मुगलों की सत्ता भारत के लिए एक परकीय विचारों से अनुप्राणित राजव्यवस्था थी। ऐसे समय में भक्तिकाल, जिसे कौव्वाली के बरअक्स कीर्तन की 'चैतन्य' धारा कहा गया, का महत्व सनातन विचारों की रक्षा के एक वैचारिक संधर्ष के रुप में स्वीकार किया जाता है।**17** इसने प्रथमतः, काल-प्रवाह से संस्कृति के मूल तत्वों को बचाए रखने में अहम योगदान किया, दूसरे एक सहज व सघन आस्था का वातावरण बनाने का भी सार्थक प्रयास किया। इस प्रकार आस्था संचालित समाज में गो-हत्या बड़े दूर की कौड़ी हो गई। मुगल काल के अनेक शासकों के समय गो-वध पर राजाज्ञा के माध्यम से रोक लगी, इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं। बाबर की भावना बहादुरशाह तक सम्मान पाती रही, हां इतना अवश्य कि औरंगजेब की नीति गोवध के मुद्दे पर कुछ अलग रही। बाबर अपनी वसीयत में यह कहता है-

पुत्र इस देश हिन्दुस्तान में विभिन्न मत-पंथ हैं। अल्लाह का हमें यह राज्य देने के लिए शुक्रिया। हमें अपने दिलों से सभी भेद मिटा देने चाहिए और प्रत्येक समुदाय के साथ परंपरा के अनुरूप

न्याय करना चाहिए। यहां के लोगों को प्रशासन के मामलों में समाविष्ट करने के लिए और उनका दिल जीतने के लिए गोहत्या को वर्जित करो**18**।

यद्यपि कि तात्कालिक शासकों की निजी मजहबी मान्यताओं में इसके लिए कोई आग्रह नहीं रहा है। पशुओं का मांस खाने के उनके व्यावहारिक आग्रह का तत्व भी कोई छुपा हुआ तथ्य नहीं है फिर भी गो-वध पर रोक लगी। इस प्रकार संभावित संघर्षो से समायोजन की मंशा का तथ्य स्पष्ट होता है। एक-दूसरा तथ्य भी रेखांकित किए जाने योग्य है। मुगल काल की स्थापना से लेकर उसके अंत तक मुगल सत्ता के विरूद्ध राजनैतिक संघर्ष का एक प्रयास लगभग लगातार उपस्थित ही रहा। राजपूत, मराठे और सिख राजा इसके उल्लेखनीय संघटकों में शूमार किए जा सकते हैं। संस्कृति के प्राचीन और सनातन मूल्यों की रक्षा और उन्हें पुष्ट करने का आग्रह मौलिक रूप से इन संघर्षरत तत्वों का विशिष्ट वैचारिक आधार रहा है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि आग्रहजन्य यह संघर्ष आमने-सामने के टकराव का रूप धर कर भी सामने आया। राजनैतिक दृष्टिकोण से यदि इन्हें एकदा निष्प्रभावी मान भी लिया जाए तो भी वैचारिक समन्वय के प्रक्रम में इनकी भूमिका को सहजतया नकारा नहीं जा सकता।

आधुनिक भारत एवं ब्रिटिश साम्राज्य

भारत के लिए अंग्रेजी आक्रमण एवं ब्रिटिश-राज सर्वाधिक विकट व विनाशकारी सिद्ध हुआ है। राजनीतिशास्त्र के एक प्रमुख विद्वान इसे यूं रेखांकित करते हैं-

भारत में विदेशी आकमण होते रहे हैं, उनके शासन के साथ-साथ उनकी लूटमार यहां चलती रही है। किंतु **1757** से आरंभ होने वाली अंग्रेजों की हुकूमत का अंदाज दूसरे विदेशियों की हुकूमतों से काफी हद तक अलग था। अंग्रेजों से पहले आने वाले विदेशी या तो लूटमार करके चले गए, (जैसे महमूद गजनवी, नादिरशाह, चंगेज खां) या फिर स्वयं इस देश द्वारा जीत लिए गए और यहीं के होकर रह गए... भारत में अपने राजनैतिक शासन के दौरान अंग्रेजों ने अपनी उन्नत पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था द्वारा भारत का इस्तेमाल अपने आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए किया। भारत से बटोरी गई दौलत ने जहां एक ओर ब्रिटेन के पूंजीवादी औद्योगिक विकास में योगदान दिया, वहीं भारत को एक ऋणग्रस्त पिछड़ा हुआ देश बना दिया। भारत अंग्रेजों के लिए स्वर्ग और अधिकांश भारतीयों के लिए नरक बन गया।**19**

इसके द्वारा संचालित आक्रमण ने न केवल जीवन के स्थूल तत्वों को आक्रांत किया वरन् अब तक सुदृढ बने रहे वैचारिक धरातल को भी रौंदा। इसे शिक्षा के माध्यम से रूप देने की योजना रखी गई। वुड के 'शिक्षा संबंधी घोषणापत्र' का उद्देश्य ही था भारत में 'पाश्चात्य संस्कृति का प्रसार और सार्वजनिक प्रशासन के लिए उचित तौर पर प्रशिक्षित सेवक प्राप्त करना'। पाश्चात्य शिक्षा के आरोपण की उनकी योजना को आकार देने के संबंध में अग्रलिखित वक्तव्य हमारी बात को अग्रसारित करता है-

"**1823** में कलकत्ता में 'जनरल कमेटी आॅफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन' का गठन किया गया जिसे

एक लाख रूपये के व्यय के विषय में निर्णय लेने का अधिकार था। परंतु शीघ्र ही यह समिति ओरियंटलिस्ट और एंगलिसिस्ट दो समूहों में बंट गई। पहला समूह प्रिंसेप के नेतृत्व में भारत में प्राचीन शिक्षा प्रणाली को कायम रखने के पक्ष में था जबकि दूसरा समूह संस्कृत, अरबी, फारसी के अध्ययन पर कोई राशि खर्च करने के पक्ष में नहीं था। इसके सदस्य उदार शिक्षा के लिए आवश्यक साहित्यिक और वैज्ञानिक जानकारी अंग्रेजी माध्यम से देने पर ही फंड की राशि को व्यय करने के पक्षधर थे। अंत में, यही द्वितीय समूह, जिसके नेता श्री मैकाले थे, विजयी रहा और संस्कृत तथा अरबी शिक्षा पर अंग्रेजी तथा पाश्चात्य शिक्षा को प्राथमिकता दी गई"।**20**

भारत को नष्ट कर डालने का उनका प्रयास बहुत हद तक सफल रहा। अपनी ही मान्यताओं व विश्वासों पर शंका करने वाले तमाम लोग इसमें उपजे। विद्वान इस बात पर सर्वथा सहमत हैं कि-

अंग्रेजी शिक्षा भारतीय जीवन की वास्तविकताओं से अलग-थलग रही। इसके माध्यम से भारतीय जीवन, उसकी राजनीतिक दासता और आर्थिक व सांस्कृतिक पिछड़ेपन का सच्चा चित्र पेश नहीं किया गया। भारत के इतिहास का विकृत रूप पेश किया गया और ब्रिटिश विजेताओं को गौरवपूर्ण सभ्यता का वाहक बताया गया। इससे भारतीयों के राष्ट्रीय गर्व और आत्मसम्मान की भावनाओं को ठेस पहुंची।**21**

अंधतार्किकता मान्यताओं और विश्वासों पर लगातार आक्षेप करने लगी। इतना ही नहीं, समाज हित व लोकहित को पीछे रख वैयक्तिक आग्रहों की पूर्ति को तत्पर एक नया वर्ग भी सामने आया।

भारतीय विचार पाश्चात्य धाराओं में बहने लगे। पेन और ह्यूम के सिद्धांत लोकप्रिय होने लगे और संस्थाबद्ध धर्म के प्रति विद्रोह प्रारंभ हुआ। अंग्रेजी शिक्षा में शिक्षित भारतीय विभिन्न धार्मिक आयोजनों को अज्ञानता और अंधविश्वास की उपज मानकर उपहास उड़ाने लगे।**22**

न केवल सामाजिक संरचना नष्ट हुई वरन् राजव्यवस्था में भी विषम तत्वों का समावेश हो गया। भारत प्रशासनिक रूप से क्रमशः अंग्रेजी राज के अधीन आया। लेकिन आक्रमण की अभूतपूर्व एवं तीखी प्रकृति ने ही शायद भारतीय जन-मन को पूरी तरह से झकझोर कर भी रख दिया। परिणामतः एक तीखा व सबल प्रतिरोध उठ खड़ा हुआ। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में भारत का अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध संगठित प्रतिकार कहीं न कहीं प्राचीन मान्यताओं व जीवन मूल्यों की रक्षा हेतु संगठित था। कारतूसों पर चढ़ी गाय एवं सूअर की चर्बी से उपजा प्रबल आकोश इसका सर्वप्रमुख कारण रहा था। ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा में नियुक्त सैनिकों के लिए लाई गई ली इन्फील्ड राइफलों में प्रयुक्त बारूद के खोखों (कार्टिज) के सिरों को दांत से काटकर खोलना होता था। सेना के हिंदू व मुसलमान समुदाय से आने वाले सैनिकों का विश्वास था कि इन खोखों के सिरों पर लगी ग्रीस में गाय व सूअर की चर्बी मिलायी गयी है**23**। ऐसे में उन्हें यकीन होने लगा कि विदेशी सरकार उनके धार्मिक

मान्यताओं को खंडित करना चाहती है। इसे 'विद्रोह' के प्रमुख कारणों में गिना जाता है।

स्वतंत्रता के लिए भारतीयों का संगठित आन्दोलन आगे बढ़ रहा था। इसके लिए आवश्यक जनचेतना की जागृति का प्रयास नेताओं द्वारा किया गया। चेतना जागरण के इस अभियान को कइयों ने प्राचीन सनातन सांस्कृतिक अधिष्ठान का आधार भी दिया। **1857** की घटना के पहले और उसके बाद के कालखण्ड में भी यह प्रवृति पायी जाती है। इस प्रकार से प्राचीन सांस्कृतिक चेतना के विकास के साथ-साथ आधुनिक राजनैतिक चेतना भी बलवती होती गई।**24** वेदों की ओर लौटो और वंदेमातरम् के स्वर इसकी परिणिति के रुप में सामने आए और एक बारगी सम्पूर्ण भारत पर छा गए। इनकी गूँज काल-प्रवाह में लुप्त न हुई। ऐसे में गो-रक्षा या गो-हत्या पर वैधानिक रोक लगाने का प्रश्न कैसे पीछे रहता? दक्कन में बालगंगाधर राव तिलक द्वारा रोपित गणपति उत्सव एवं उनके द्वारा स्थापित गोहत्या विरोधी सभा कालक्रम में सम्पूर्ण देश में फैल गए जिसके बड़े ही दूरगामी परिणाम हुए**25**। कांग्रेस के बहुलतापूर्ण गठजोड़ से संगठित आंदोलन के दौरान भी सांस्कृतिक आग्रह अनेक अवसरों पर आगे आए। कई बार यह आग्रह अंग्रेजी सरकार के समक्ष संगठित राजनैतिक आग्रह के रुप में भी प्रस्तुत किया गया। पंडित मदन मोहन मालवीय जी के नेतृत्व में किया गया प्रयास इसका प्रतीक है। उसमें गो-रक्षा का प्रश्न एक अहम् प्रश्न था।

भारत की ऐतिहासिक यात्रा के इस मुकाम पर सर्वथा पहली बार कुछ ऐसे सूत्र मिलते हैं जो हमें सचेत भी करते हैं। तात्कालिक सांस्कृतिक चेतना की जागृति में से सांप्रदायिक पृथकता के तत्वों को छांटकर उनका प्रयोग अंग्रेजी सरकार द्वारा भारतीयों, विशेषकर हिन्दुओं व मुसलमानों की एकता को तोड़ देने में सफलतापूर्वक किया गया**26**। शायद यह प्रत्येक शासक वर्ग की स्वयं की सत्ता की रक्षा के लिए अन्तर्निहित प्रकृति हो। गो-रक्षा के आग्रह को हिन्दू सांप्रदायिकता ठहराया गया और मुसलमानों के अस्तित्व के लिए खतरा बताकर मन में शंका के बीज रोपे गए। भारत के विभाजन का प्रमुख कारण होने का एक गंभीरतम् आरोप भी दुर्भाग्यवश इस नेक आग्रह पर मढ़ा गया। आज भी जब कभी गो-हत्या पर कानूनन प्रतिबंध की बात आगे बढ़ती है तो सबसे बड़ी चुनौती मुस्लिम समाज में अंग्रेजों द्वारा रोपी गई शंका से पार जाना ही होती है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत

संघर्षो को सफलता मिली। भारतीयों को स्वराज्य मिलना सुनिश्चित हुआ। ब्रिटिश सत्ता की हुकूमत तो **15** अगस्त **1947** को समाप्त हो गई लेकिन संविधान तो अब भी ब्रिटिश ही था। इससे मुक्ति के लिए एक अभियान भी भारत ने अपने लोगों में से चुनकर बनाई गई संविधान सभा के माध्यम से चलाया था जिसका वाक्य था "संविधान सभा भारत को स्वतंत्र प्रभुतासंपन्न गणराज्य के रूप में घोषित करने के अपने दृढ़ और सत्यनिष्ठ संकल्प की और भारत के भावी शासन के लिए संविधान बनाने की घोषणा करती है"**27**। इस अभियान की पूर्णाहुति पर भारत को मिलना था एक स्वयं का 'लोक से व्युत्पन्न' संविधान जिसमें हो उसके ही सांस्कृतिक,

ऐतिहासिक और सामाजिक तत्वों व सत्यों से अनुप्राणित एक आत्मा। इनके संलयन (फ्यूजन) से उगाना था एक समर्थ सूरज जो गतकाल के अंधेरों को चीरकर ला सके एक सर्वसुखकर बिहान। और दुनिया ने देखा कि भारत ने उसे पा लिया। संविधान सभा में 'अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित' यह संविधान 'भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए'**28** एक सुस्पष्ट दिशायुक्त, 'तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय; विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता; प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के' लक्ष्योन्मुख, विषद् उपस्कर था जिसमें भारत के भविष्य को आलोकित करने में समर्थ अतीत की रश्मियाँ भी जगमग थीं। 'एकम् सद् विप्राः बहुधा वदन्ति' की प्राचीन भावना के सर्वथा अनुकूल ही जहाँ एक ओर राज्य का स्वरूप 'पंथनिरपेक्ष' रखते हुए विश्वास के विषय पर राज्य द्वारा हस्तक्षेप न करने का व 'सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक'**29** प्रदत्त किया गया; कहा गया कि 'राज्य, किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म... के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा'**30** वहीं दूसरी ओर गो-हत्या के विधिक प्रतिषेध के लिए प्रयास करने का निदेश भी राज्य को दिया गया**31**-48. राज्य, कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिशोध करने के लिए कदम उठाएगा।"

यह शासन की नीति का मूलभूत तत्व भी नियत किया गया**32**। यद्यपि कि पश्चात् कथित् इन निर्देशो की व्यवस्था को संविधान में न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय बताया गया पर संविधान सभा की मंशा यह नहीं थी कि न्यायालय इनकी भावना का प्रयोग संविधान की व्याख्या में भी न करें। पश्चात्वर्ती घटनाक्रमों ने इसे पुष्ट भी किया जब इस विचार को आधार बनाकर सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक विवादों का निपटारा किया। इनमें उन मूल अधिकारों के उल्लंघन के प्रश्न भी थे जिनकी रक्षा का महत कर्तव्य न्यायालय को सौंपा गया है। न्यायालय ने अपने मत का आधार तैयार करने में इन निदेशक तत्वों की व्याख्या की है और उनका आश्रय भी लिया है**33**। उपरोक्त वर्णित आधारभूमि में एवं सांविधानिक निर्देशों के अनुपालन में अब विधायिका द्वारा कार्यपालिका की सुविधा का ध्यान रखते हुए गो-हत्या प्रतिषेध के लिए देश के भीतर अनेक राज्यों के द्वारा विधायनों की रचना की जा चुकी है। जब भी इन्हें न्यायालयों के समक्ष चुनौती दी गई तब लगभग हर बार न्यायालयों ने इन विधायनों को सांविधानिक निर्देश, समाज की नैतिकता और लोकनीति आदि के अनुरूप बताकर संवैधानिक करार दिया है34। इस बात को स्पष्ट करने हेतु कुछ प्रमुख वादों का हवाला दिया जाना उचित होगा। मुहम्मद हनीफ कुरैशी ब. बिहार राज्य**35** के वाद में (23. 04. 1958 को निर्णीत) सी पी एवं बरार पशु संरक्षण अधिनियम, **1949**; बिहार पशुधन संरक्षण एवं

संवर्द्धन अधिनियम, **1955** तथा उ0 प्र0 गोर्वध प्रतिशोध अधिनियम, **1955** की विधिमान्यता को चुनौती दी गयी थी। न्यायालय के समक्ष विचारार्थ यह प्रश्न लाया गया कि क्या विचाराधीन अधिनियमों द्वारा गाय, भैंस, सांड़ इत्यादि पशुओं के वध पर लगाया गया पूर्ण प्रतिबंध संवैधानिक है? न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उपरोक्त अधिनियमों द्वारा किसी भी उम्र की गाय तथा भैंस के नर या मादा बछड़ों के वध का प्रतिशोध करना अनुच्छेद **25** में प्रदान किए गए अधिकार का उल्लंघन नहीं करता क्योंकि गाय का बलिदान मुस्लिम धर्म का आवश्यक अंग नहीं है। फलतः गोर्वध पर प्रतिबंध लगाने वाले प्रावधान संवैधानिक घोषित किए गये। दूसरे पक्ष पर विचार करते हुए न्यायालय ने यह सिद्धांत दिया कि भैंस, सांड़ और बैलों के, जबकि वे दूध देने या संतति उत्पन्न करने या भारवाही प्शु के रूप में कार्य करने की अपनी क्षमता खो देते हैं, वध पर लगाया गया पूर्ण प्रतिबंध असंवैधानिक होगा। ऐसा प्रतिबंध संविधान के अनुच्छेद **19(1)**(छ) में प्रदत्त 'किसी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने' के अधिकार को छीनता है। ध्यातव्य है कि यह अभिनिर्धारण व्यापक वाद-विवाद का विषय रहा है। वस्तुतः यह अभिनिर्धारण न्यायालय के समक्ष गोवंश के संबन्ध में सही स्थिति न रखे जाने के कारण ही किया गया प्रतीत होता है। बाद में उच्चतम न्यायालय ने गुजरात राज्य ब. मिर्जापुर मोती कुरेशी कसाब जमात अहमदाबाद व अन्य**36** के मामले में गोवंश की उपयोगिता के संबन्ध में अपने समक्ष प्रस्तुत सही स्थिति का विचार करने के पश्चात हनीफ कुरैशी वाद में दिए गए अपने उक्त निर्णय को पलट दिया और इस विधायन को सांविधानिक निर्देश, समाज की नैतिकता और लोकनीति आदि के अनुरूप बताकर संवैधानिक करार दिया। संदर्भित वाद में बाम्बे पशु संरक्षण (गुजरात संशोधन) अधिनियम, **1994** के उस प्रावधान की संवैधानिकता को चुनौती दी गयी थी जो सभी गोवंशाीय पशुओं के वध पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाता था।

मूल अधिकारों और नीति के निदेशक सिद्धान्तों के मध्य संघर्ष तब देखने को मिल जाता है जबकि राज्य किसी निदेशक सिद्धांत को अग्रसर करने हेतु कोई ऐसा कदम आगे लेता है जो कुछ मात्रा तक मूल अधिकारों को प्रभावित करता है। वस्तुतः मूल अधिकारों की न्यायिकतः प्रवर्तनीयता तथा दूसरी ओर नीति निदेशक तत्वों की स्थिति ऐसी न होने को आधार बना कर मूल अधिकारों को अपेक्षाकृत ज्यादा अधिमान देने की प्रवृत्ति प्रारम्भ में विद्यमान रही। गुजरात राज्य ब. मिर्जापुर मोती कुरेशी कसाब जमात अहमदाबाद व अन्य **37** (**26.10.2005** को उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत) के मामले में न्यायालय के समक्ष इसी प्रकार का एक महत्वपूर्ण प्रश्न था कि क्या कोई अधिनियमिति राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों को आगे बढ़ाने के लिए नागरिकों को अनुच्छेद **19(1)** में प्रदत्त मूल अधिकारों की अनदेखी कर सकती है व उन्हें छीन सकती है? इस प्रश्न के उत्तर में न्यायालय द्वारा पुनः समन्वयकारी दृष्टिकोण को अपनाते हुए यह मत प्रतिपादित किया गया कि जबकि अधिकारों और निबंधनों के पारस्परिक

अंतक्रियाओं की व्याख्या करनी हो तब भाग-**3** (मूल अधिकार) और भाग - **4** (निदेशक सिद्धांतों) को एक साथ पढ़ा जाना आवश्यक होगा। जिन निबंधनों को अनुच्छेद **19(1)** में प्रदत्त अधिकारों की सूची पर लागू किया जा सकता है वे अनुच्छेद **19(2)** से **19(6)** तक सीमित नहीं हैं; जब कभी अधिकारों पर लगाए गए प्रतिबंधों की युक्तियुक्तता का अभिनिर्धारण करना होगा उस समय राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों के अध्याय में विहित प्रावधानों भी सहायक होंगे और उन पर निर्भर करना उचित होगा। (पैरा-**52**)

अनेक अधिनियमितियों के द्वारा गोवध को अपराध घोषित किया गया है। न्यायालयों के द्वारा न केवल इनकी संवैधानिकता की घोषणा की गयी है वरन् यथासमय अपराध की विचारण-प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक सिद्धांतो को भी प्रतिपादित किया है। इस क्रम में अपराध की सूचना सहित कई बिंदु शामिल हैं। यथा; हरियाणा राज्य ब. भजनलाल**38** के वाद में अपराध की रिपोर्ट दर्ज किए जाने के संबन्ध में सिद्धांत अधिकथित किए गए। यदि किसी थाने के भारसाधक अधिकारी को किसी बात की सूचना दी जाती है जोकि एक संज्ञेय अपराध है तब वह उसे अपने पास दर्ज करेगा। सूचना के संबन्ध में विश्वास दृढ़ करने के लिए रिपोर्ट दर्ज करने को टाला नहीं जा सकता है। चूंकि धारा **154(1)** में इत्तिला को विश्वसनीय अथवा युक्तियुक्त के रूप में विशेषित नहीं किया गया है अतः पुलिस अधिकारी रिपोर्ट दर्ज करने से, सूचना की विश्वसनीयता अथवा युक्तियुक्तता के आधार पर, इंकार नहीं कर सकता है। फलतः पुलिस अधिकारी के लिए यह आबद्धकर हो जाता है कि वह दी गई सूचना के सार को लिखकर विहित प्रारूप में मामला दर्ज करे। (पारा-**31**)

विचारण की प्रक्रिया के दौरान गोवंश की अभिरक्षा को लेकर भी अनेक अवसरों पर संशय पैदा हुए हैं। दण्ड प्रक्रिया संहिता, **1973** की धारा **451** द्वारा संविधि विहित नियम यह है कि न्यायालय विचार के पूर्ण होने तक उसमें पेश की गयी सम्पत्ति की अभिरक्षा हेतु ठीक आदेश कर सकेगा। कृषि गोसेवा संघ व अन्य ब. महाराष्ट्र राज्य**39** के मामले में मुम्बई उच्च न्यायालय ने इस बिंदु पर विधिक सिद्धांत को और भी स्पष्ट किया। अभिनिर्धारित हुआ कि यह आदेश ऐसे जानवर के संरक्षण के लिए होना चाहिए न कि उसके वध या विनाश के लिए। हत्या के लिए तात्पर्यित जानवर की अभिरक्षा प्रदान करते समय समाजसेवी संगठनों को वरीयता देनी चाहिए और अभिरक्षा प्रदान करने से पूर्व ही ऐसे संगठनों की योग्यता और संरक्षण तथा भरण-पोषण के इंतजामों के बारे में सुनिश्चित हो जाना चाहिए। (पैरा **6**)

अपने पश्चातवर्ती निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने भी इसी प्रकार का सिद्धांत अभिकथित किया है। **22.02.2002** को उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत उत्तर प्रदेश राज्य ब. मुस्तकीम**40** के मामलें में न्यायालय ने कहा कि अभियुक्तों को ही पशुओं की अभिरक्षा सौंप देने का इलाहाबाद उच्च न्यायालय का आदेश घोर आश्चर्यजनक और गलत है। पशुओं को गोशाला की अभिरक्षा में सौंपने का आदेश हुआ और राज्य को यह भी निर्देश दिया गया कि वह जब तक कि मामले का

विचारण जारी है तब तक उनके (गायों के) संरक्षण का समस्त भार वहन करे।

निष्कर्ष

प्रारंभ में धर्म विश्व के सभी समुदायों में विधि के उद्भव का पवित्र स्त्रोत था। इसे ईश्वर द्वारा या देवों के द्वारा प्रदत्त तथा मनीषियों द्वारा प्रतिपादित माना गया जो धीरे धीरे चिंतनशीलता द्वारा परिमार्जित एवं विकसित हुआ। आगे चलकर परिस्थितियों की भिन्नता के कारण पश्चात्य देशों और भारत में भिन्न रूपों व क्रम में निरपेक्ष विधि का विकास हो सका। भारत एक लम्बी ऐतिहासिक यात्रा से गुजरते हुए और अपनी विशिष्ट भौगोलिक प्रकृति के संरक्षण में आकार ग्रहण करता हुआ वर्तमान तक पहुंचा है। अपनी मौलिक धारा से विचलन वैसे तो अनेक कारणों से इतिहास के कई खण्डों में देखने को मिलता है लेकिन गोरक्षा के प्रश्न को यदि वहां ढूंढा जाए तो हर बार यह स्वयं को समाज के स्थापित विचार के रूप में उद्घाटित करता हुआ मिलता है। भारत पर विदेशी आक्रमणों के आरम्भ होने से बहुत पहले ही बहुविध स्थापित यह विचार आक्रमणों व विभिन्न परिवर्तनकारी प्रभावों के बावजूद भी अपना अस्तित्व कायम रखने में सफल हो सका। यह तथ्य इस बात का पुख्ता प्रमाण है कि यह विचार भारत की मुख्य चेतना के भीतर रचता बसता है। न केवल लोक में वरन् यह भाव लोक की आधुनिक प्रतिनिधि संस्थाओं के माध्यम से भी मुखरित हुआ है। न्यायिक अधिष्ठान द्वारा भी इसका समर्थन हुआ है। यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि मौजूदा समय की उथल पुथल समाज की अन्तर्निहित सनातन समावेशी चेतना की प्रकृति के प्रभाव में अंततः तिरोहित हो जाएगी। गोरक्षा भारत में एक अति प्राचीन संस्कार और सांस्कृतिक मूल्य है, यह विचार विविध भांति अधिष्ठायी हो रहा है।

संदर्भ सूची

[1] 11 जुलाई 2017 को भारतीय उच्चतम न्यायालय ने एक आदेश के माध्यम से केन्द्र सरकार के द्वारा निर्गत वध हेतु मवेषियों की खरीद बिक्री को प्रतिबंधित करने वाले नियमों का प्रवर्तन पूरे देश में स्थगित कर दिया है। वस्तुतः न्यायालय ने मद्रास उच्च न्यायालय के द्वारा एस. सेल्वागोमती ब. भारत संघ के मामले में निर्गत स्थगन-आदेश की व्यापकता का सम्पूर्ण देश में विस्तार किया है। निर्णय से उत्पन्न गतिरोध में दोनों पक्ष आमने सामने हैं और सामाजिक प्रतिकियाओं का क्रम जारी है।

[2] Jha, D. N.(1989). Ancient India: In Historical Outline .Manohar P.39.

[3] Fairservis W. Jr. (1986). Cattle and the Harrapan Chiefdoms of the Indus Valley. Expedition, 28(2) PP. 43-50.

[4] Rig-Veda, X.28.3: अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान सुन्वन्ति सोमान पिबसि तवमेशाम | पचन्ति ते वर्षभानत्सि तेषां पर्क्षेण यन्मघवन हूयमानः ||

[5] Rig-Veda, X.91.14: यस्मिन्नश्वास रषभास उक्षणो वशा मेषावस्रष्टास आहुताः

| कीलालपे सोमप्ष्ठाय वेधसेह्रदा मतिं जनये चारुमग्नये ||

[6] "It is worth noting that in none of his (Pundit Dayanand) books has the Pundit written that beef is forbidden and impure, nor has he proven that eating beef and slaughtering cows are forbidden according to the Vedas. Rather, he says that the slaughter of the cow was forbidden in order to lower the price of milk and ghee. He also believes that there may be times when slaughtering of cows may be permissible, as is evident from his books Satyarth Prakash and Ved Bhash". Ahmad H M G, *Barahin-e-Ahmadiyya* (Part IV, First published in Urdu in Qadian, India, 1884, Islam International Publications Ltd. UK 2016 ISBN 978-1-84880-880-5), 9.

[7] Jha D. N. (2009). Myth of Holy Cow. Navayana Publishing: New Delhi , P.30

[8] Rig-Veda, X.16.4: अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं तेर्चिः | यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनंसुक्रतामु लोकम ||

[9] "One who partakes of human flesh, the flesh of a horse or of another animal, and deprives others of milk by slaughtering cows, O King, if such a fiend does not desist by other means, then you should not hesitate to cut off his head." *Rig-Veda* (10.87.16)

[10] Rig-Veda, I.1.4. अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वत: परि भूरसि स इद देवेषु गच्छति

[11] Rig-Veda 1-64-27; 5-83-8; 7-68-9; 1- 164-40; 8-69-2; 9-1-9; 9-93-3; 10-6-11; 10-87-16.

[12] अघ्न्या यजमानस्य पशून्पाहि. (*Yajurveda 1.1); Yasmintsarvaani bhutaanyaatmaivaabhuudvijaanatah Tatra ko mohah kah shokah ekatvamanupasyatah* (*Yajurveda 40.7*) (Those who see all beings as souls do not feel infatuation or anguish at their sight, for they experience oneness with them); *Ya aamam maansamadanti paurusheyam cha ye kravih Garbhaan khaadanti keshavaastaanito naashayaamasi* (*Atharvaveda 8.6.23*) – (We ought to destroy those who eat cooked as well as uncooked meat, meat involving destruction of males and females, foetus and eggs.)

[13] Anumantaa vishasitaa nihantaa krayavikrayee Samskartaa chopahartaa cha khadakashcheti ghaatakaah (Manusmrithi 5.51) : (Those who permit slaying of animals; those who bring animals for slaughter; those who slaughter; those who sell meat; those who purchase meat; those who prepare dish out of it; those who serve that meat and those who eat are all murderers.)

[14] Thapar, R. (2001). The Penguin History of Early India. Penguin Books, P. 167.

[15] Ibid. 296

[16] Seshagiri Rao (ed.) (2010). Encyclopedia of Hinduism, Vol. III, p. 248.

[17] "In sum, the interaction of Islam and Hinduism created a new feeling amongst the Hindus and some of

their religious preachers started defensive religious movements against Islam".

[18] Dr. S. H. Mirza, Hindu-Muslim Confrontation A Case-Study of Pakistan 712-1947 (Lahor, Nazaria-i-Pakistan Trust 2009). 12.

[19] राष्ट्रीय संग्रहालय में संरक्षित बाबर की वसीयत का हिंदी रूपांतर

[20] डॉ. एम. पी. जैन, 2014 ''विभिन्न सामाजिक वर्गों पर उपनिवेषवाद का प्रभाव'':डॉ. सत्या एम. राय (संपादित) भारत में उपनिवेषवाद और राष्ट्रवाद, हिंदी माध्यम कार्वान्वयन निदेशालय, दिल्ली विष्वविद्यालय, 125.

[21] सुषमा यादव, 2014 ''ब्रिटिश उपनिवेषवाद का सामाजिक जीवन, शिक्षा तथा संस्कृति पर प्रभाव'':डा सत्या एम. राय (संपादित) भारत में उपनिवेषवाद और राष्ट्रवाद, हिंदी माध्यम कार्वान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 143.

[22] तदैव, 146

[23] तदैव, 148

[24] "The reports about the mixing of bones dust in atta and the introduction of the Enfield rifle enhanced the sepoys' growing disaffection with the Government. The cartridges of he new rifles had to be bitten off before loading and the grease was reportedly made of beef and pig fat.the army administration did nothing to allay these fears, and the sepoys felt their religion was in real danger."Bipan Chandra et al.(1989), India's Struggle for Independence, Penguin Books, p. 34

[25] विनय कुमार 2014 "राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीय कांग्रेसः उदय और पे्ररक तत्व, 1885 तक'':डाॅ सत्या एम. राय (संपादित) भारत में उपनिवेषवाद और राष्ट्रवाद, हिंदी माध्यम कार्वान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 218.

[26] पूर्वोद्धृत नोट 17, पृ. 64।

[27] See, Bipan Chandra et al. (1989), India's Struggle for Independence, Penguin Books, p. 408

[28] (1947) CAD 304 (उद्देश्य खण्ड, 13 दिसंबर 1946 को पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रस्तावित)

[29] उद्देशिका, भारत का संविधान

[30] अनुच्छेद 25 (1)

[31] अनुच्छेद 15 (1)

[32] अनुच्छेद 48, भारत का संविधान

[33] अनुच्छेद 37,

[34] State of Gujarat vs Mirzapur Moti Kureshi Kaseab Jamat, (2005) 8 SCC 534.

[35] तदैव

[36] AIR 1958 SC 73

[37] उपरोक्त नोट 33

[38] उपरोक्त नोट 33

[39] 1992 Supp (1) SCC 335

[40] 1988 Maharashtra Law Journal 293

[41] Criminal Appeal no. 283-287/2002